

सात पैसे

ज़िग्मोंद मोरित्ज़ (1879–1942) – हंगरी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। उनकी इस मन छूने वाली कहानी में भीषण गरीबी, कठिनाई के बीच में भी पलने वाली हंसी, इंसानी रिश्तों और भावनाओं का बहुत सुंदर चित्रण है।

हंगरी से अनुवाद – भारत भूषण अग्रवाल,

स्रोत – बारह हंगरी कहानियां, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली,

सभी चित्र : एकलव्य द्वारा प्रकाशित संदर्भ से साभार

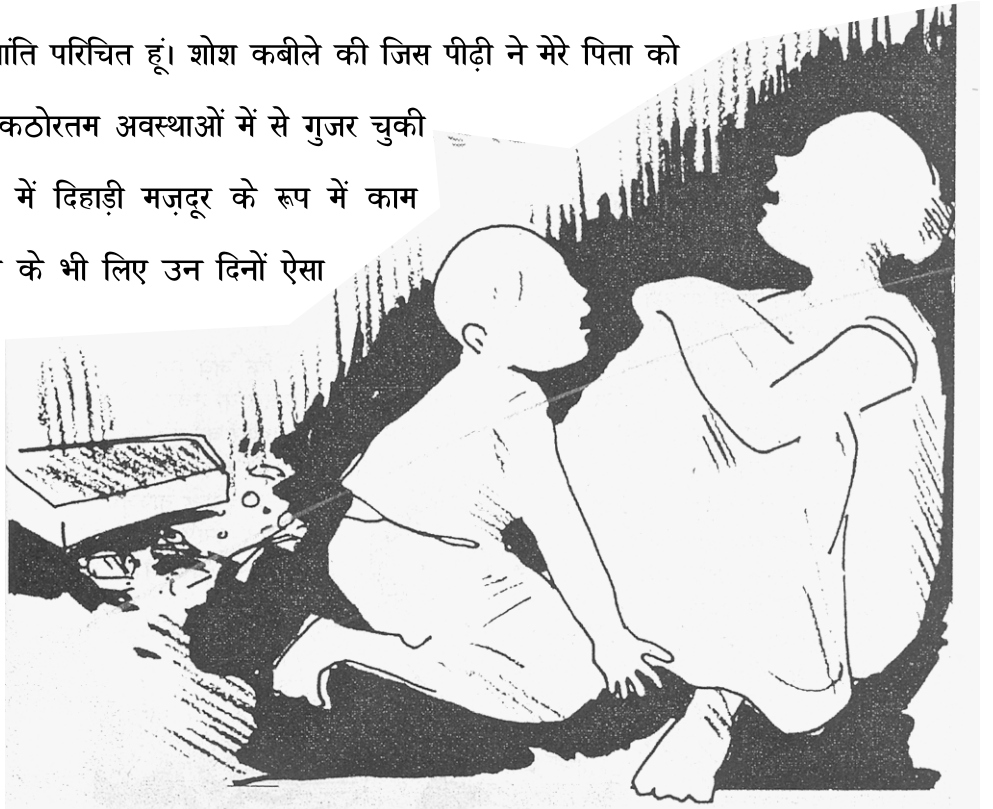
द

र्दशी देवताओं ने निर्धनों को भी हंसी का वरदान दे दिया है। झुग्गी-झोपड़ियों के किराएदार हर वक्त

रोते-झींकते नहीं रहते, अक्सर उनकी बस्तियों से अट्टहास भी गूंज उठता है। मैं तो यहां तक कह सकता हूं कि निर्धन अक्सर ऐसी बातों पर हंस पड़ते हैं जिन पर रुलाई आनी चाहिए।

मैं उस दुनिया से भली भांति परिचित हूं। शोश कबीले की जिस पीढ़ी ने मेरे पिता को जन्म दिया था, वह गरीबी की कठोरतम अवस्थाओं में से गुजर चुकी थी। मेरे पिता एक मशीन घर में दिहाड़ी मज़दूर के रूप में काम करते थे। उनके या और किसी के भी लिए उन दिनों ऐसा कुछ न था जिसकी डींग हांकी जाए (फिर भी वे डींग तो हांकते ही थे।)

और यह नितान्त सच है कि अपने बचपन के उन वर्षों में मैं जितना हंसता था उतना



अपनी जिन्दगी में और कभी नहीं हंसा।

सच तो यह है कि मैं फिर कभी उतना जी खोलकर हंस भी कैसे सकता था, क्योंकि तब तक मैं अपनी उन हंसमुख, लाल गालों वाली मां को खो बैठा था जो इतने मीठे ढंग से हंसती थीं कि अन्त में उनके गालों से आंसू झरने लग जाते थे और उनकी हंसी की समाप्ति खांसी के ऐसे दौर से होती थी जिससे उनका गला घुटने लग जाता था।

पर वे भी जितनी उस शाम को हंसी थी जब हम सात पैसे खोज रहे थे, उतनी और कभी नहीं हंसी। हम खोजते रहे, और हम पैसे पा भी गए थे। तीन पैसे तो सिलाई की मशीन के दराज़ में थे, एक बर्तनों की आलमारी में था... बाकी को खोजना ज़्यादा मुश्किल काम था।

पहले तीन पैसे तो मेरी मां ने अपने आप ही ढूँढ़ निकाले। उनका ख्याल था कि दराज़ में और भी सिक्के होने चाहिए, क्योंकि वे सिलाई करके पैसे कमाती रहती थी और जो कुछ भी कमाती, दराज़ में डाल देती। सिलाई-मशीन की दराज़ मुझे अनन्त सोने की खान जान पड़ती थी, जब भी हम उसमें हाथ डालते, हमारी मुरादें पूरी हो जातीं।

यही कारण है कि जब मैंने मां को सुइयों, कैंचियों, रिबन के टुकड़ों, बटनों और बेलों के अम्बार को कुरेदते देखा और थोड़ी देर तक उलट-पुलट करने के बाद उन्हें ताज्जुब से यह कहते सुना कि “न जाने कहां जा छिपे हैं” तो मैं भौंचक्का रह गया।

“कौन?”

“सिक्के,” उन्होंने हंसते हुए कहा।

उन्होंने दराज़ खींच निकाला।

“आना बिट्टू, ज़रा उन बदमाशों को खोज निकालें। कितने शैतान है ये सिक्के!” वे ज़मीन पर बैठ गईं और दराज़ इतने एहतियात से नीचे रक्खा मानों उन्हें डर हो कि उसकी चीज़ें कहीं उड़ न जाएं; तब उन्होंने बड़ी खूबसूरती से उसे औंधाया, मानों वे हैट में तितलियां पकड़ रही हों।

उनके इस नाटक पर हंसे बिना नहीं रहा जा सकता था।

“इसी में तो हैं वे, इसी में,” उन्होंने खिलखिलाकर कहा, और दराज़ उठाने की उन्हें कोई जल्दी न थी। “एक भी पैसा होगा तो इसी में होना चाहिए।”

मैं पंजों के बल बैठ गया और ध्यान से देखने लगा कि कोई चमकीला सिक्का निकलता है या नहीं। कोई हरकत नहीं हुई।

सच पूछिए तो हममें से किसी को भी यह यकीन न था कि उसमें एक भी सिक्का है। अपने इस बचपने पर हंसते हुए हम एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। मैंने औंधे पड़े दराज़ को हाथ लगाया।

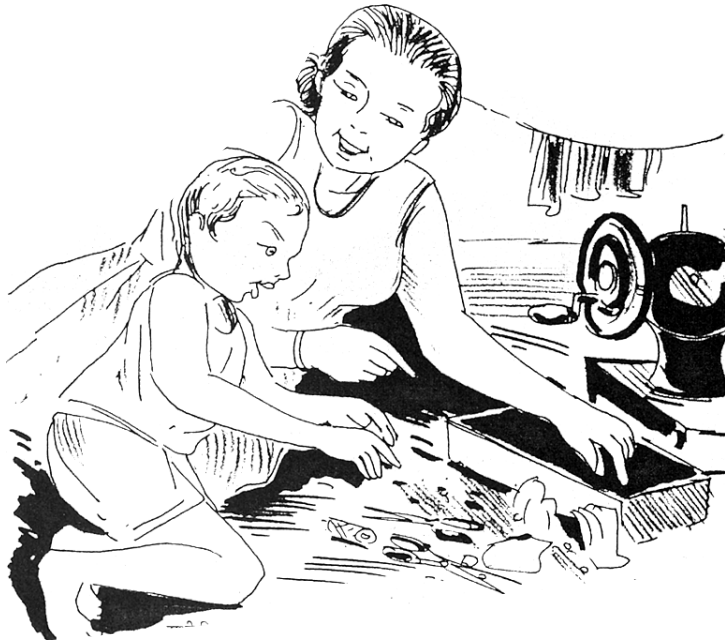
“शश” मेरी मां ने शुशकारते हुए मुझसे कहा, “नीचे बैठे रहो बिट्टू, नहीं तो वे भाग जाएंगे। तुम क्या जानो जैसे कैसे उड़न छू होते हैं। वे इतनी तेज़ी से भागते हैं कि बस लुढ़कते ही चले जाते हैं। ऐसा गज़ब करते हैं कि बस...”

हंसी के मारे हमारे पेट में बल पड़ गए। हम बहुत बार देख चुके थे, जैसे कितनी आसानी से लुढ़कते जाते हैं।

जब हंसी का दौर खत्म हुआ तब फिर मैंने दराज़ उठाने के लिए हाथ बढ़ाया।

“खबरदार!” मां चीख पड़ी और मैंने झट से अपनी उंगलियां खींच लीं, मानो मेरा हाथ चूल्हे पर जा पड़ा हो।

“आहिस्ता, उड़ाऊ कहीं के! उन्हें भगाने की ऐसी क्या जल्दी है? जब तक वे पिटारी में बंद पड़े हैं, तभी तक वे अपने हैं। और थोड़ी देर बने रहने दो। क्योंकि तुम जानो, मुझे कुछ कपड़े धोने हैं, इसके लिए साबुन की दरकार है और साबुन के लिए मेरे पास कम-से कम सात पैसे जरूर होने चाहिए, इससे कम में तो आएगा नहीं। तीन तो मुझे मिल गए हैं, चार और चाहिए। वे इसी नन्हें से घर में होने चाहिए। वे इसी में तो रहते हैं, पर उन्हें



छेड़छाड़ पसंद नहीं। और अगर कहीं नाराज़ हो गए तो वे गायब हो जाएंगे और फिर कभी हमारे हाथ नहीं आने के। आहिस्ता, भैया, रुपया बड़ी नाजुक चीज़ होती है, उसे मुलायमियत से हाथ लगाना चाहिए। वह इज़्जत पसंद होता है, चट से बुरा मान जाता है, तुनकमिज़ाज सेठानी की तरह... तुम्हें कोई तुकबन्दी याद नहीं है जो उसे घर से बाहर खींच लाए?”

उफ, उनकी चबर-चबर पर हम कैसे हंसे थे! मैंने जो स्तुति छेड़ी वह सचमुच अजीब थी। वह इस तरह थी :

“चाचा सिक्के, झूठ न समझो, तेरे घर में आग लगी है।”

इतना कहकर मैंने दराज़ फिर से सीधा कर दिया।

उसके नीचे हर तरह की रद्दी चीज़ें थी, पर सिक्के... एक भी नहीं।

मेरी मां मुंह बिगाड़कर ढेर को कुरेदती ही रही, पर उससे क्या बनता।

“कितने दुख की बात है,” उन्होंने कहा, “कि हमारे यहां कोई मेज़ नहीं है। अगर यह दराज़ मेज़ पर औंधाया जाता तो ज़्यादा अच्छा लगता और तब सिक्के भी टिके रहते।”

मैंने सारी चीज़ें समेटकर फिर से दराज़ में भर दी। इस बीच मां सोच में डूबी रही। वे अपने दिमाग पर सारा जोर लगाकर सोचती रही कि उन्होंने और कहीं तो कुछ और पैसे नहीं डाल रखे हैं, पर उन्हें कुछ भी याद न आया।

अचानक मुझे एक बात सूझ गई।

“मां, मुझे एक जगह मालूम है जहां एक सिक्का है।”

“कहां बिट्टू? चलो उसे पकड़ लें, कहीं बाद में बरफ की तरह पिघल न जाए।”

“कांच की अलमारी के दराज़ में पहले एक पैसा पड़ा रहता था।”

“वाह मुझे अच्छा हुआ तुमने पहले नहीं



बताया, नहीं तो वह अब तक रहता थोड़े ही।”

हम उठे और उस अलमारी तक गए जिसका कांच न जाने कब का गायब हो चुका था; पैसा सचमुच उसी दराज में था जैसा मेरा ख्याल था। पिछले तीन दिनों से मेरे मन में उसे उड़ाने की लगी हुई थी पर मैं इतनी हिम्मत नहीं जुटा पाता। हिम्मत पड़ गई होती तो मैंने टॉफी पर खर्च कर दिया होता।

“अब अपने पास चार पैसे तो हो गए। कोई फिकर नहीं बिट्टू, आधे से ज़्यादा तो हो ही चुके हैं। बस अब हमें तीन और चाहिए। और अगर एक घंटे में हमने चार ढूँढ निकाले तो बाकी तीन तो नाश्ते के पहले ही मिल जाएंगे। इस हिसाब से रात होने से पहले मैं मज़े से कपड़े धो लूंगी। चलो देखें, शायद उन दराजों में भी कुछ पड़े हों।”

अगर हर दराज में एक पैसा होता तो सब ठीक हो जाता। इतने पैसों की तो हमें जरूरत न थी। क्योंकि जब यह पुरानी अलमारी अपने जोबन पर थी तब इसने एक अमीर घराने की सेवा की थी, जहां इसने बड़े-बड़े खज़ाने देखे थे। पर हमारे घर में बेचारी को खास कुछ न मिल सका - उसके अंजर-पंजर ढीले हो गए थे, धुन लग गई थी और वह पोपली हो गई थी।

मां एक-एक दराज खोलती और झिड़कती जातीं।

“यह तो किसी ज़माने में अमीर हुआ करता था। इस बेचारे को तो कभी कुछ न मिला। यह वाला तो हमेशा खनखनाहट पर ही जीता आया है। और तुम, भिरवमंगे कहीं के, तुम्हारे पास तो एक कच्चा भी नहीं है। इसमें कभी कुछ नहीं होगा, इसमें तो हम अपनी गरीबी रखते हैं। और तुम, तुम्हारा क्या हाल है? राम करे तुम्हें कभी कुछ न मिले; मैंने बस आज ही तुमसे एक पैसा मांगा और फिर भी तुम मुंह बिगाड़ रहे हो। यह जरूर सबसे ज़्यादा अमीर होगा। देखा न!” जैसे ही उन्होंने सबसे निचले दराज को झटके से खोला त्यों ही उनकी हंसी फूट पड़ी क्योंकि उसके पेंदे में एक छिपटी भी न थी।

वे मेरी गर्दन से लटक गई और हम दोनों ऐसे बेतहाशा हंस पड़े कि ज़मीन पर बैठ जाना पड़ा।

“ज़रा रुको,” वे चौंकी, “चुटकी बजाते पैसे ले आती हूँ। तुम्हारे पिता के कपड़ों में ज़रूर होंगे।”

दीवार पर कुछ कीलें थीं जिन पर हमारे कपड़े टंगते थे। मेरी मां ने पिताजी की जैकट की सबसे ऊपर वाली जेब टटोली, और गज़ब की बात तो देखा कि उनकी उंगलियां एक पैसा खींच लाईं। उन्हें अपनी आंखों पर विश्वास न हुआ।



“हाय, मैं मर गई” वे चीखी, “यह लो। अब कुल कितने हो गए? अब तो गिनना भी मुश्किल पड़ रहा है। एक-दो तीन चार-पांच .. पांच! बस अब दो और चाहिए। दो पैसे, कोई बड़ी बात नहीं। जब पांच हो गए तो और तो हो ही जाएंगे।” वे हड़बड़ाती हुई पिताजी की सारी जेबें टटोलती रहीं पर अफसोस, सब बेकार। और कोई पैसा न मिला। बढ़िया से बढ़िया मज़ाक भी और दो पैसों को आकृष्ट न कर सका।

मेरी मां के गाल उत्तेजना और थकान के मारे लाल गुलाबों की तरह दमकने लगे। उन्हें काम करने की मनाही थी क्योंकि वे जब भी काम करती थीं, बीमार पड़ जाती थीं। यह तो खैर एक खास ढंग का काम था और आप, लोगों को पैसों की तलाश करने से थोड़े ही रोक सकते हैं।

नाशते का वक्त आया और निकल गया। अंधेरा होने को ही था। मेरे पिताजी को सबेरे के लिए एक धुली हुई कमीज़ की जरूरत थी और धुलाई संभव न थी। केवल कुएं के पानी से चिकना मैल दूर नहीं हो सकता था।

अचानक मां ने अपना माथा थपथपाया।

“मैं भी कैसी मूर्ख हूँ। अपनी जेब देखने का ख्याल ही नहीं आया! अब मैं सोचती हूँ, ज़रा टटोल देखूँ।”

उन्होंने अपनी जेब टटोली और निस्संदेह उसमें एक पैसा था। छठा पैसा। हमें सचमुच बुखार चढ़ आया। बस सिर्फ एक ही पैसे की कसर थी।

“जरा मैं तो देखूँ तुम्हारी जेबें, शायद उनमें कोई हो।”

हे राम, उन्हें दिखाने से क्या होना था, वे तो खाली थीं।

अंधेरा हो चला था और हम अपने छह पैसे लिये बैठे थे। इससे तो अच्छा था कि एक भी न होता। यहूदी मोदी उधार नहीं देता था, और हमारे पड़ोसियों की हालत हम-जैसी ही थी। वैसे भी, भला कोई एक पैसा मांगने भी जाता है!

हम बस यही कर सकते थे कि अपनी दशा पर खुलकर हंस लें।

अभी हम हंस ही रहे थे कि एक भिखमंगा आ पहुंचा। वह रुआंसे स्वर में भजन गाता हुआ भीख मांग

रहा था।

मां हंसते-हंसते प्रायः बेसुध हो गई।

“अरे भैया, बस भी करो,” उन्होंने कहा, “बेकार में मेरी तो सारी शाम निकल गई। आधा पौंड साबुन मोल लेना है, पर एक पैसे की कमी पड़ गई है।”

वह दयालु बुढ़ा भिखमंगा उनकी ओर घूरकर देखता रहा।

“क्या कहा, तुम्हें एक पैसे की कमी है?”

“हां, एक पैसे की।”

“मैं दिए देता हूँ।”

“वाह, कहीं भिखारी से भी भीख ली जाती होगी।”

“कोई बात नहीं बिटिया, मैं इसका करूंगा भी क्या। मुझे ज़मीन में एक गड्ढा और थोड़ी सी मिट्टी के अलावा और चाहिए भी क्या। बस फिर मुझे कोई झंझट न रहेगा।”

उसने मेरे हाथ पर एक पैसा रख दिया और हमारी दुआओं के बीच ही खिसकता बना।

“भगवान का शुक्र है,” मेरी मां बोली, “चलो, अब झटपट...”

अचानक वे बीच में ही थमीं और खिलखिलाकर हंसने लगीं।

“अब मैं धुलाई तो कर नहीं पाऊंगी, पर खैर चलो। किसी तरह पैसे तो जुड़े। अंधेरा हो रहा है और लालटेन में तेल नहीं है।”

वे इतने जोर से हंसी कि उनका दम फूल गया। एक भयंकर घातक हंसी के दौर से उनकी सारी देह हिलने लगी। वे अपने पैरों पर झूमने लगीं। और उन्होंने अपना चेहरा अपनी हथेलियों में छिपा लिया और ज्यों ही मैं थामने को आगे बढ़ा, मुझे लगा मेरे हाथों पर से कोई गर्म चीज़ खिसकती जा रही है।

खून, कीमती चमकदार खून। मेरी मां का खून, उनका, जो इतना खुलकर हंसती थीं कि कोई गरीब भी क्या हसेगा!

